कहानी

भाड़े का टट्टू

आगरा कालेज के मैदान में संध्या-समय दो युवक हाथ से हाथ मिलाये टहल रहे थे। एक का नाम यशवंत था, दूसरे का रमेश। यशवंत डीलडौल का ऊँचा और बलिष्ठ था। उसके मुख पर संयम और स्वास्थ्य की कांति झलकती थी। रमेश छोटे कद और इकहरे बदन का, तेजहीन और दुर्बल आदमी था। दोनों में किसी विषय पर बहस हो रही थी।

यशवंत ने कहा- मैं आत्मा के आगे धन का कुछ मूल्य नहीं समझता।

रमेश बोला- बड़ी खुशी की बात है।

यशवंत- हाँ, देख लेना। तुम ताना मार रहे हो, लेकिन मैं दिखला दूँगा कि धन को कितना तुच्छ समझता हूँ।

रमेश- खैर, दिखला देना। मैं तो धन को तुच्छ नहीं समझता। धन के लिए 15 वर्षों से किताब चाट रहा हूँ, धन के लिए माँ-बाप, भाई-बंद सबसे अलग यहाँ पड़ा हूँ, न-जाने अभी कितनी सलामियाँ देनी पड़ेंगी, कितनी खुशामद करनी पड़ेगी। क्या इसमें आत्मा का पतन न होगा ? मैं तो इतने ऊँचे आदर्श का पालन नहीं कर सकता। यहाँ तो अगर किसी मुकदमे में अच्छी रिश्वत पा जायँ तो शायद छोड़ न सकें। क्या तुम छोड़ दोगे ?

यशवंत- मैं उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँगा और मुझे विश्वास है कि तुम जितने नीच बनते हो, उतने नहीं हो।

रमेश- मैं उससे कहीं नीच हूँ, जितना कहता हूँ।

यशवंत- मुझे तो यकीन नहीं आता कि स्वार्थ के लिए तुम किसी को नुकसान पहुँचा सकोगे ?

रमेश- भाई, संसार में आदर्श का निर्वाह केवल संन्यासी ही कर सकता है; मैं तो नहीं कर सकता। मैं तो समझता हूँ कि अगर तुम्हें धक्का देकर तुमसे बाजी जीत सकूँ, तो तुम्हें जरूर गिरा दूँगा। और, बुरा न मानो तो कह दूँ, तुम भी मुझे जरूर गिरा दोगे। स्वार्थ का त्याग करना कठिन है।

यशवंत- तो मैं कहूँगा कि तुम भाड़े के टट्टू हो।

रमेश- और मैं कहूँगा कि तुम काठ के उल्लू हो।

यशवंत और रमेश साथ-साथ स्कूल में दाखिल हुए और साथ-ही-साथ उपाधियाँ लेकर कालेज से निकले। यशवंत कुछ मंदबुद्धि, पर बला का मिहनती था। जिस काम को हाथ में लेता, उससे चिमट जाता और उसे पूरा करके ही छोड़ता। रमेश तेज था, पर आलसी। घंटे-भर भी जमकर बैठना उसके लिए मुश्किल था। एम.ए, तक तो वह आगे रहा और यशवंत पीछे, मेहनत बुद्धि-बल से परास्त होती रही; लेकिन सिविल-सर्विस में पाँसा पलट गया। यशवंत सब धंधे छोड़कर किताबों पर पिल पड़ा; घूमना-फिरना, सैर-सपाटा, सरकस-थिएटर, यार-दोस्त, सबसे मुँह मोड़कर अपने एकांत कुटीर में जा बैठा। रमेश दोस्तों के साथ गप-शप उड़ाता, क्रिकेट खेलता रहा। कभी-कभी मनोरंजन के तौर पर किताब देख लेता। कदाचित् उसे विश्वास था कि अब की भी मेरी तेजी बाजी ले जायगी। अक्सर जाकर यशवंत को दिक करता। उसकी किताब बंद कर देता; कहता, क्यों प्राण दे रहे हो ? सिविल-सर्विस कोई मुक्ति तो नहीं है, जिसके लिए दुनिया से नाता तोड़ लिया जाय ! यहाँ तक कि यशवंत उसे आते देखता, तो किवाड़ें बंद कर लेता।

आखिर परीक्षा का दिन आ पहुँचा। यशवंत ने सबकुछ याद किया था, पर किसी प्रश्न का उत्तर सोचने लगता, तो उसे मालूम होता, मैंने जितना पढ़ा था, सब भूल गया। वह बहुत घबराया हुआ था। रमेश पहले से कुछ सोचने का आदी न था। सोचता, जब परचा सामने आयेगा, उस वक्त देखा जायगा। वह आत्मविश्वास से फूला-फूला फिरता था।

परीक्षा का फल निकला, तो सुस्त कछुआ तेज खरगोश से बाजी मार ले गया था।

अब रमेश की आँखें खुलीं पर वह हताश न हुआ। योग्य आदमी के लिए यश और धन की कमी नहीं, यह उसका विश्वास था। उसने कानून की परीक्षा की तैयारी शुरू की और यद्यपि उसने बहुत ज्यादा मिहनत न की, लेकिन अव्वल दरजे में पास हुआ। यशवंत ने उसको बधाई का तार भेजा। अब एक जिले का अफसर हो गया था।

दस साल गुजर गये। यशवंत दिलोजान से काम करता था और उसके अफसर उससे बहुत प्रसन्न थे। पर अफसर जितने प्रसन्न थे, मातहत उतने ही अप्रसन्न रहते थे। वह खुद जितनी मिहनत करता था, मातहतों से भी उतनी ही मिहनत लेना चाहता था, खुद जितना बेलौस था, मातहतों को भी उतना ही बेलौस बनाना चाहता था। ऐसे आदमी बड़े कारगुजार समझे जाते हैं। यशवंत की कारगुजारी का अफसरों पर सिक्का जमता जाता था। पाँच वर्षों में ही वह जिले का जज बना दिया गया।

रमेश इतना भाग्यशाली न था। वह जिस इजलास में वकालत करने जाता, वहीं असफल रहता। हाकिम को नियत समय पर आने में देर हो जाती, तो खुद भी चल देता, और फिर बुलाने से भी न आता। कहता- अगर हाकिम वक्त की पाबंदी नहीं करता, तो मैं क्यों करूँ ? मुझे क्या गरज पड़ी है कि घंटों उनके इजलास पर खड़ा उनकी राह देखा करूँ ? बहस इतनी निर्भीकता से करता कि खुशामद के आदी हुक्काम की निगाहों में उसकी निर्भीकता गुस्ताखी मालूम होती। सहनशीलता उसे छू नहीं गयी थी। हाकिम हो या दूसरे पक्ष का वकील, जो उसके मुँह लगता, उसकी खबर लेता था। यहाँ तक कि एक बार वह जिला-जज ही से लड़ बैठा। फल यह हुआ कि उसकी सनद छीन ली गयी। किंतु मुवक्किलों के हृदय में उसका सम्मान ज्यों-का-त्यों रहा।

तब उसने आगरा-कालेज में शिक्षक का पद प्राप्त कर लिया। किंतु यहाँ भी दुर्भाग्य ने साथ न छोड़ा। प्रिंसिपल से पहले ही दिन खटपट हो गयी। प्रिंसिपल का सिद्धांत

रमेश यह अँधेर देखकर चुप बैठनेवाला मनुष्य न था। ज्यों-ज्यों अधिकारियों की निरंकुशता बढ़ती थी, त्यों-त्यों उसका भी जोश बढ़ता था। रोज कहीं न कहीं व्याख्यान देता और उसके प्रायः सभी व्याख्यान विद्रोहात्मक भावों से भरे होते थे। स्पष्ट और खरी बातें कहना ही विद्रोह है ! अगर किसी का राजनीतिक भाषण विद्रोहात्मक नहीं माना गया, तो समझ लो, उसने अपने आंतरिक भावों को गुप्त रखा है। उसके दिल में जो कुछ है, उसे जबान पर लाने का साहस उसमें नहीं है। रमेश ने मनोभावों को गुप्त रखना सीखा ही न था। प्रजा का नेता बनकर जेल और फाँसी से डरना क्या ! जो आफत आनी हो, आवे। वहसब कुछ सहने को तैयार बैठा था। अधिकारियों की आँखों में भी वही सबसे ज्यादा गड़ा हुआ था।